11107CH04

अध्याय 4

पाश्चात्य समाजशास्त्री–एक परिचय

समाजशास्त्र को कभी–कभी 'क्रांति के युग' की संतान भी कहा जाता है। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसका जन्म 19वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में हुआ, जहाँ विगत तीन सौ वर्षों के क्रांतिकारी परिवर्तनों ने वहाँ के लोगों के जीवन को निर्णायक रूप से बदल दिया था। समाजशास्त्र के अभ्युदय में तीन क्रांतिकारी परिवर्तनों का महत्त्वपूर्ण हाथ है–ज्ञानोदय या वैज्ञानिक क्रांति; फ्रांसिसी क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति। इस प्रक्रिया ने केवल यूरोपीय समाज को ही पूरी तरह से नहीं बदला बल्कि यूरोप के संपर्क में आने के कारण पूरे विश्व को भी परिवर्तित किया।

इस अध्याय में तीन महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रियों के मुख्य विचारों पर प्रकाश डाला जाएगा। ये हैं–कार्ल मार्क्स, एमिल दुर्खाइम तथा मैक्स वैबर। समाजशास्त्र की शास्त्रीय परंपरा के धारक के नाते इन्होंने इस विषय की नींव रखी। इनके विचार और सोच आधुनिक परिवेश में भी प्रासंगिक हैं। बेशक इनके सिद्धांतों की आलोचना हुई है और इनमें समय के साथ महत्त्वपूर्ण संशोधन भी किए गए हैं। चूँकि समाज के बारे में बनी अवधारणाएँ स्वयं अपने सामाजिक परिवेश से भी प्रभावित होती हैं, अतः हम अपनी चर्चा उन परिस्थितियों से प्रारंभ करते हैं, जिनमें समाजशास्त्र का उद्भव हुआ।

समाजशास्त्र का संदर्भ

यूरोप का आधुनिक युग व आधुनिकता की वे तमाम अवस्थाएँ जो आज हमारे लिए सहज–स्वाभाविक बन चुकी हैं–यह सब तीन मुख्य प्रक्रियाओं की देन हैं। ये हैं–ज्ञानोदय अथवा 'विवेक का युग (एज ऑफ़ रीजन)', फ्रांसिसी क्रांति में निहित राजनीतिक संप्रभुता की खोज तथा अधिक उत्पादन (मास प्रोडक्शन) की वह व्यवस्था जिसका उद्घाटन औद्योगिक क्रांति ने किया। चूँकि इस विषय पर पहली पुस्तक *समाजशास्त्र परिचय* में चर्चा की जा चुकी है, अतः यहाँ हम केवल इन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के बौद्धिक परिणामों के बारे में चर्चा करेंगे।

क्रियाकलाप 1

समाजशास्त्र परिचय पुस्तक के प्रथम अध्याय की चर्चा 'यूरोप में आधुनिक युग का आगमन' को देखें। वह कौन से परिवर्तन थे जिनसे यह तीनों प्रक्रियाएँ जुड़ी हुई थीं?

ज्ञानोदय

17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व 18वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में संसार के बारे में सोचने-विचारने के बिलकुल नए व मौलिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। ज्ञानोदय या प्रबोधन के नाम से जाने गए इस नए दर्शन ने जहाँ एक तरफ़ मनुष्य को संपूर्ण ब्रह्मांड के केंद्र बिंदु के रूप में स्थापित किया, वहीं दूसरी तरफ़ विवेक को मनुष्य की मुख्य विशिष्टता का दर्जा दिया। विवेकपूर्ण व आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता ने मनुष्य को अपनी ही नज़र में हमेशा के लिए बदल दिया। एकल मानव अब 'व्यक्ति' बन गया; एक ऐसी हस्ती जो एक साथ ज्ञान का उत्पादक भी है और उपभोक्ता भी। इस मानव व्यक्ति को 'ज्ञान का पात्र' की उपाधि भी दी गई। लेकिन दूसरी तरफ़, यह भी सच था कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को पूर्ण रूप से मनुष्य माना गया जो विवेकपूर्ण ढंग से सोच-विचार सकते थे। जो इस काबिल नहीं समझे गए उन्हें मानव का दर्जा नहीं दिया गया बल्कि आदिमानव या बर्बर मानव कहा गया। चूँकि मानव समाज मनुष्य द्वारा बनाया गया है, इसका युक्तिसंगत विश्लेषण संभव है। इस प्रकार के विश्लेषण के सहारे एक समाज में रहने वाले लोग दूसरे समाज को भी समझ सकते हैं।

युक्तिसंगत को मानव जगत की पारिभाषिक विशिष्टता का स्थान दिया जा सके इसके लिए प्रकृति, धर्म-संप्रदाय व देवी-देवताओं के महत्त्व को कम करना अनिवार्य था। आधुनिक युग के आने से पहले मानव जगत को जानने-समझने के लिए लोग इन्हीं पर निर्भर थे। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञानोदय या प्रबोधन मात्र को एक संभावना से वास्तविक यथार्थ में बदलने में उन वैचारिक प्रवृत्तियों का हाथ है जिन्हें आज हम 'धर्मनिरपेक्षता', 'वैज्ञानिक सोच' व 'मानवतावादी सोच' की संज्ञा देते हैं।

फ्रांसिसी क्रांति

फ्रांसिसी क्रांति (1789) ने व्यक्ति तथा राष्ट्र-राज्य के स्तर पर राजनीतिक संप्रभुता के आगमन की घोषणा की। मानवाधिकार के घोषणपत्र ने सभी नागरिकों की समानता पर बल दिया तथा जन्मजात (जन्म के आधार पर प्राप्त होने वाले) विशेषाधिकारों की वैधता पर प्रश्न उठाया। इसने व्यक्ति को धार्मिक तथा ज़मींदारी संस्थाओं के अत्याचारी शासन से मुक्त किया, जो फ्रांस की क्रांति के पहले वहाँ अपना वर्चस्व बनाए हुए थी। किसानों की, जो अधिकतर 'सर्फ' (बंधक मजदूर या कृषिदास) थे, कुलीन वर्ग के जागीरदारों के चंगुल से आज़ाद करवाया गया। अधिकांश करों को रद्द कर दिया गया जो किसान जागीरदारों तथा चर्च या धार्मिक संस्थान को दिया करते थे। गणतंत्र के स्वतंत्र नागरिक होने के नाते प्रभुत्वसंपन्न व्यक्ति हकों व अधिकारों के धारक बने तथा उन्हें कानून और राजकीय संस्थाओं के समक्ष समानता का अधिकार भी प्राप्त हुआ। राज्य को व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता का सम्मान करना पड़ा और राजकीय कानून किसी भी व्यक्ति के निजी जीवन में दखल नहीं दे सकते थे। राज्य द्वारा संचालित क्षेत्र तथा सार्वजनिक घरबार द्वारा संचालित क्षेत्र को एक दूसरे से अलग कर दिया गया। सार्वजनिक व घरेलू क्षेत्रों की मर्यादा के

अनुकूल कौन–से सामाजिक संस्थान या गतिविधियाँ हैं–इस विषय पर नयी मान्यताएँ व नए विचार कायम हुए। उदाहरण के तौर पर–'धर्म' तथा 'परिवार' का अधिकांश भाग अब घरेलू या व्यक्तिगत क्षेत्र के अनुकूल माना गया जबकि शिक्षा (विशेषकर स्कूली शिक्षा/विद्यालयी शिक्षा) को अब सार्वजनिक क्षेत्र के लायक माना गया। ध्यान रहे कि फ्रांसिसी क्रांति व आधुनिक युग के पहले शिक्षा घरेलू या व्यक्तिगत विषय था–इसमें राज्य की कोई खास भूमिका नहीं थी। दूसरी तरफ़, धार्मिक व राजकीय संस्थान मिले–जुले थे और 'परिवार' आज से कहीं ज़्यादा सार्वजनिक था। साथ ही राष्ट–राज्य को भी नए सिरे से परिभाषित किया गया। अब इसे एक ऐसी प्रभुत्वसंपन्न हस्ती माना गया जिसके पास एक केंद्रीकृत शासन तंत्र है। फ्रांसिसी क्रांति के सिद्धांत–स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व–आधुनिक राज्य के नए नारे बने।

औद्योगिक क्रांति

आधुनिक उद्योगों की नींव औद्योगिक क्रांति के द्वारा रखी गई, जिसकी शुरुआत ब्रिटेन में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुई। इसके दो प्रमुख पहलू थे। पहला, विज्ञान तथा तकनीकी का औद्योगिक उत्पादन में व्यवस्थित प्रयोग, विशेषकर नयी मशीनों का आविष्कार तथा ऊर्जा के नए साधनों का औद्योगिक कामों में उपयोग। दूसरा, औद्योगिक क्रांति ने श्रम तथा बाज़ार को नए ढंग से व बड़े पैमाने पर संगठित करने के तरीके विकसित किए, जैसा कि पहले कभी देखने में नहीं आया था। नयी मशीनों (जैसे कि "स्पिनिंग जेन्नी" नाम की सूत कातने वाली मशीन) ने औद्योगिक उत्पादकता को बेशुमार रूप से बढ़ाया। साथ ही ऊर्जा के नए स्रोतों ने (जैसे भाप से चलने वाले इंजन के विभिन्न स्वरूप) उत्पादन प्रक्रिया को सुगम बनाया। इन्हीं प्रक्रियाओं ने विशाल कारखानों की नयी औद्योगिक व्यवस्था व अधिक उत्पादन (यानी बड़े पैमाने पर औद्योगिक वस्तुओं का निर्माण) को जन्म दिया। अब वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर संपूर्ण विश्व के बाजारों के लिए किया जाने लगा। इन उत्पादों के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चा माल भी दुनियाभर से प्राप्त किया जाने लगा। इस प्रकार बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग पूरी दुनिया में छा गए।

उत्पादन व्यवस्था में परिवर्तन होने के कारण सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन हुए। शहरी इलाकों में बसे हुए उद्योगों को चलाने के लिए मज़दूरों की माँग को उन विस्थापित लोगों ने पूरा किया जो ग्रामीण इलाकों को छोड़, काम की तलाश में शहर आकर बस गए थे। कम तनख्वाह मिलने के कारण अपनी जीविका चलाने के लिए पुरुषों और स्त्रियों को ही नहीं बल्कि बच्चों को भी लंबे समय तक खतरनाक परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। आधुनिक उद्योगों ने शहरों को देहात पर हावी होने में मदद दी। कस्बे और छोटे–छोटे शहर जनसंख्या निवास के मुख्य स्थान बने। यहाँ ऊँच–नीच की विषमताओं में बँटा विशाल जनसमूह थोड़े मगर सघन आबादी के भीड़–भाड़ भरे इलाकों में रहने लगा। अमीर व शक्तिशाली लोग शहरों में रहने लगे, लेकिन साथ ही मज़दूर वर्ग के गरीब लोग भी उन्हीं शहरों में झुग्गी–झोपड़ियों वाली गंदी बस्तियों में

कार्ल मार्क्स (1818-1883)

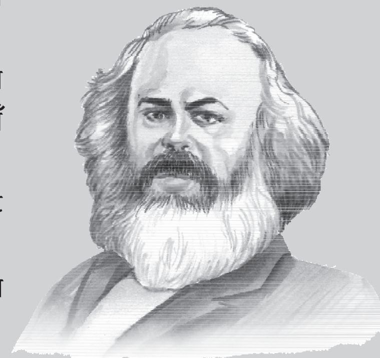

5 मई, 1818 को, प्रशिया (जर्मनी) के राइनलैंड नामक प्रांत में जन्म। संपन्न उदारवादी वकील के पुत्र।

1834–36 : बॉन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन तत्पश्चात बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्ययन जहाँ युवा हेगेलियन्स से प्रभावित।

1841 : जेना विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट का शोधपत्र पूरा किया।

1843 : जेनी वॉन वेस्टफेलेन से विवाह कर पेरिस में बस गए।

1844 : पेरिस में फ्रेडरिक एंगेल्स से मुलाकात, जीवनपर्यंत मित्र बने।

1847 : 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन' द्वारा उनको संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों का दस्तावेज़ तैयार करने के लिए आमंत्रित किया गया। यह मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा संयुक्त रूप से लिखा गया तथा इसका प्रकाशन–*'मैनिफैस्टो ऑफ द कम्युनिस्ट पार्टी'* (1948) के नाम से हुआ।

1849 : देशनिकाला; मृत्युपर्यंत इंग्लैंड में निवास।

1852 : *'द एटिंथ ब्रूमायर ऑफ लुई बोनापार्ट'* का प्रकाशन।

1859 : *'ए कॉन्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी'* का प्रकाशन।

1867 : *'कैपिटल'*, प्रथम खंड–प्रकाशित

1881 : जेनी वॉन वेस्टफेलेन की मृत्यु

1883 : मार्क्स का निधन तथा लंदन हाइगेट सीमेट्री में दफनाए गए।

रहने को विवश थे। आधुनिक शासन पद्धतियों के अनुसार राज तंत्र को स्वास्थ्य, सफाई व्यवस्था, आपराधिक गतिविधियों व व्यवसायों पर नियंत्रण तथा सर्वांगीण विकास जैसे सार्वजनिक सामूहिक विषयों की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी। इन नयी ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए शासन तंत्र को नए प्रकार की जानकारी व ज्ञान की आवश्यकता महसूस हुई। नए ज्ञान के लिए उभरती माँग ने सामाजिक विज्ञान और विशेषकर समाजशास्त्र जैसी नयी विधाओं के अभ्युदय व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रारंभ से ही समाजशास्त्रीय विचार मुख्य रूप से औद्योगिक समाज के विकास के वैज्ञानिक अन्वेषण से जुड़े हुए हैं। इसके कारण विद्वानों में इस विषय पर विवाद है कि समाजशास्त्र 'नए औद्योगिक समाज का विज्ञान' है। अनुभव को आधार बनाकर समाजिक तौर–तरीकों पर वैज्ञानिक विचार–विमर्श तभी संभव हुआ जब आधुनिक

औद्योगिक समाज की शुरुआत हुई। किसी भी समाज को समझने का आधार, वहाँ के राज्य द्वारा तैयार की गई वैज्ञानिक सूचना बनी जो इसके सामाजिक संकायों की देख-रेख करती है। समाजशास्त्रीय सिद्धांत इसी चिंतन-मनन का परिणाम है।

कार्ल मार्क्स जर्मनी के निवासी थे परंतु देश से निकाले जाने के कारण उन्होंने अपना अधिकतम समय ब्रिटेन में बिताया। उनके क्रांतिकारी राजनीतिक विचारों के कारण उन्हें न केवल अपनी मातृभूमि बल्कि आस्ट्रिया तथा फ्रांस से भी निकाल दिया गया। दार्शनिक न होते हुए भी इन्होंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था। वे एक सामाजिक चिंतक और विश्लेषक थे जिन्होंने अत्याचार तथा शोषण को खत्म करने की वकालत की। उन्हें विश्वास था कि वैज्ञानिक समाजवाद के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। इसकी प्राप्ति के लिए मार्क्स ने पूँजीवादी समाज का आलोचनात्मक विश्लेषण कर उसकी कमज़ोरियों को उजागर किया ताकि इस व्यवस्था का पतन हो सके। मार्क्स का यह कहना था कि समाज ने विभिन्न चरणों में उन्नति की है। ये चरण हैं—आदिम साम्यवाद, दासता, सामंतवादी व्यवस्था तथा पूँजीवादी व्यवस्था। पूँजीवाद मनुष्य के विकास का सबसे नवीनतम चरण है लेकिन, उनका मानना था कि बहुत जल्दी ही इसका स्थान समाजवाद ले लेगा।

पूँजीवादी समाज में अलगाव की स्थिति और शक्ति का स्थानांतरण कई स्तरों पर काम करता हुआ दिखाई देता है। पहला, आधुनिक पूँजीवादी समाज में मनुष्य प्रकृति से अपने आपको काफी अलग-थलग पाता है। दूसरा, व्यक्ति में अलगाव की स्थिति पैदा हो गई है क्योंकि पूँजीवाद ने सामाजिक व्यवस्था के चले आ रहे सामूहिक रूप को व्यक्तिगत बना दिया है और यहाँ सभी आपसी संबंध ज़्यादातर बाज़ार से परिचालित और व्यवस्थित होते हैं। तीसरा, कामकाजी व्यक्तियों का एक बड़ा समूह स्वयं अपनी मेहनत के फल से वंचित है क्योंकि मज़दूर का अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर कोई अधिकार नहीं है इसके अलावा मज़दूरों का कार्यप्रणाली पर कोई नियंत्रण नहीं है। पहले, प्रशिक्षित दस्तकार का अपने श्रम पर पूरा नियंत्रण होता था। आज कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की दिनचर्या का निर्धारण प्रबंधक करते हैं। अतः इन परिणामों के फलस्वरूप आज व्यक्ति स्वयं से अलग हो गया है और अपने जीवन को सक्षम बनाने के लिए वह संघर्ष करता है जहाँ वह आज़ाद तो है परंतु अलग-थलग है और अपने जीवन पर उसका नियंत्रण पहले की तुलना में कम हो गया है।

हालाँकि यह व्यवस्था शोषण तथा अत्याचार पर आधारित थी; परंतु फिर भी मार्क्स का यह मानना था कि पूँजीवाद, मानव इतिहास में एक आवश्यक तथा प्रगतिशील चरण रहा क्योंकि इसने ऐसा वातावरण तैयार किया जो भविष्य में समान अधिकारों की वकालत करने तथा शोषण और गरीबी को समाप्त करने के लिए आवश्यक है। पूँजीवादी समाज में परिवर्तन सर्वहारा वर्ग द्वारा लाया जाएगा जो इसके शोषण के शिकार हैं; जो एक साथ मिलकर क्रांतिकारी परिवर्तन द्वारा इसे जड़ से समाप्त कर स्वतंत्रता तथा समानता पर आधारित समाजवादी (सोशलिस्ट) समाज की स्थापना करेंगे। पूँजीवादी व्यवस्था

की कार्यप्रणाली को समझने के लिए मार्क्स ने इसके राजनीतिक सामाजिक विशेषकर इसके आर्थिक रूप का गहन अध्ययन किया।

अर्थव्यवस्था के बारे में मार्क्स की धारणा थी कि यह उत्पादन के तरीकों पर आधारित होती है। यह उत्पादन की विस्तृत प्रणाली है जिसका संबंध ऐतिहासिक काल से होता है। आदिम साम्यवाद, दास प्रथा, सामंतवाद, पूँजीवाद—ये सब उत्पादन की व्यवस्थाएँ हैं। सामान्य स्तर पर उत्पादन की व्यवस्थाएँ एक काल विशेष में जीवन की विशेषताओं को दिखाती हैं। विशिष्ट स्तर पर हम, उत्पादन की व्यवस्था को एक इमारत की तरह ले सकते हैं। जैसे एक इमारत में एक आधार या नींव होती है, जिस पर इमारत खड़ी होती है और फिर एक ढाँचा, जो इस नींव पर खड़ा किया जाता है। इसी प्रकार यहाँ पर नींव या अर्थव्यवस्था का आधार—प्राथमिक तौर पर आर्थिक होता है और इसमें उत्पादक शक्तियाँ और उत्पादन संबंध शामिल होते हैं। यहाँ उत्पादक शक्तियों से तात्पर्य उत्पादन के उन सभी साधनों से है; जैसे—भूमि, मज़दूर, तकनीक, ऊर्जा के विभिन्न साधन (बिजली, कोयला, पेट्रोलियम आदि)। उत्पादन संबंध के अंतर्गत वे सभी आर्थिक संबंध आते हैं जो मज़दूर संगठन के रूप में उत्पादन में भाग लेते हैं। उत्पादन संबंध संपत्ति संबंधी भी होते हैं क्योंकि ये स्वामित्व अथवा उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण से संबंधित होते हैं।

उदाहरण के तौर पर, आदिम साम्यवाद में उत्पादन के तरीकों के अंतर्गत मुख्यत: प्रकृति–जंगल, भूमि, जानवर इत्यादि आते हैं। इसमें तकनीक के आदिम तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है; जैसे—पत्थर के सरल औज़ार तथा शिकार के हथियार। उत्पादन संबंध सामूहिक संपत्ति पर आधारित थे (इस समय निजी संपत्ति की अवधारणा नहीं थी)। शिकार तथा संग्रहण के आदिम तरीके मज़दूर संगठन के रूप थे।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था का आधार मुख्यत: उत्पादक शक्तियों और उत्पादन से उनके संबंधों पर आधारित होता है। इसी धरातल पर समाज की सभी संस्थाएँ—सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक एक दूसरे पर आश्रित हैं। अत: धर्म, कला, कानून, साहित्य तथा विभिन्न प्रकार के विश्वास और सोच जैसी संस्थाएँ इसी अधिसंरचना के भाग हैं जिनका निर्माण इस नींव पर किया गया है। मार्क्स का यह मानना था कि व्यक्ति की सोच और विश्वास ने उसी अर्थव्यवस्था से जन्म लिया है जिसका वे हिस्सा हैं। व्यक्ति अपनी जीवनचर्या कैसे कमाता है; इससे निर्धारित होता है कि उसकी सोच कैसी है। भौतिक जीवन सोच को आकार देते हैं परंतु सोच भौतिक जीवन को आकार नहीं देती। यह तर्क मार्क्स की समकालीन धारणा से बिलकुल अलग था। उस समय यह प्रचलित था कि मनुष्य जैसा चाहे वैसा सोचने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि विचार ही दुनिया को आकार देते हैं।

मार्क्स ने आर्थिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं पर अधिक बल दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि मानव इतिहास में ये प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की नींव होते हैं। अगर हम यह समझ सकें कि किस तरह अर्थव्यवस्था कार्य करती है और किस प्रकार यह पहले भी बदलती रही है, तो हम यह सीख सकेंगे कि भविष्य में समाज में

कैसे परिवर्तन आएँगे। परंतु इस प्रकार का परिवर्तन कैसे लाया जा सकता है? मार्क्स का उत्तर है—वर्ग संघर्ष द्वारा।

वर्ग संघर्ष

मार्क्स के लिए, व्यक्ति को सामाजिक समूहों में विभाजित करने का मुख्य तरीका धर्म, भाषा, राष्ट्रीयता अथवा समान पहचान के बजाए उत्पादन प्रक्रिया के संदर्भ में था। उन्होंने तर्क दिया कि सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में, जो व्यक्ति एक जैसे पदों पर आसीन होते हैं. वे स्वतः ही एक वर्ग निर्मित करते हैं। उत्पादन प्रक्रिया में अपनी स्थिति के अनुसार तथा संपत्ति के संबंधों में, उनके एक जैसे हित तथा उद्देश्य होते हैं चाहे उन्हें इसकी पहचान उस समय न हो। वर्गों का निर्माण एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत होता है, जो उत्पादन में सहायक शक्तियों की स्थिति में परिवर्तन तथा पहले से विद्यमान वर्गों के मध्य होने वाले संघर्षों के फलस्वरूप होता है। जैसे उत्पादन के साधन—उत्पादन तकनीक तथा उत्पादन के सामाजिक संबंधों—में परिवर्तन आता है तो विभिन्न वर्गों में संघर्ष बढ़ जाता है जिसका परिणाम संघर्ष होता है। उदाहरणतः उत्पादन के पूँजीवादी साधन सर्वहारा वर्ग का निर्माण करते हैं, जो नवीन शहरी संपत्तिविहीन वर्ग होता है जिसका निर्माण सामंतवादी कृषक व्यवस्था के विनाश के फलस्वरूप हुआ है। सर्फ तथा छोटे-छोटे कृषकों को भूमि तथा आजीविका के पूर्ववर्ती स्रोत से बेदखल कर दिया गया। तत्पश्चात् अपनी आजीविका कमाने के लिए वे नगरों में जाकर बसने लगे तथा कानून एवं पुलिस के दबाव के फलस्वरूप उन्हें नए बने कारखानों में काम करना पड़ा। अतः एक बृहद् नवीन सामाजिक वर्ग का निर्माण हुआ जो संपत्तिविहीन था और जिन्हें अपनी आजीविका के लिए मजबूरी में काम करना पड़ता था। उत्पादन प्रक्रिया में साझे रूप से काम करने के कारण मज़दूरों ने एक अलग वर्ग बनाया।

मार्क्स वर्ग संघर्ष के प्रतिपादक थे। उनका यह मानना था कि वर्ग संघर्ष सामाजिक परिवर्तन लाने वाली मुख्य ताकत होती है। *कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो* (जो कार्य करने का कार्यक्रम भी था) में मार्क्स तथा एंगेल्स ने अपने विचार स्पष्ट तथा संक्षेप में रखे। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ घोषणा करती हैं, "प्रत्येक विद्यमान समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है"। मनुष्य के इतिहास को ढूँढ़ते हुए उन्होंने यह बताया कि वर्ग संघर्ष की प्रकृति विभिन्न ऐतिहासिक कालों में भिन्न थी। आदिम से आधुनिक रूप में समाज का विकास कई भिन्न चरणों में हुआ है तथा प्रत्येक काल में शोषक तथा शोषित वर्ग एक-दूसरे से अलग होते हैं। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है, "आज़ाद तथा दास, कुलीन तथा सामान्यजन, ज़मींदार एवं सर्फ, श्रेणी प्रमुख तथा कारीगर; एक शब्द में शोषक और शोषित, एक दूसरे का विरोध लगातार करते रहे हैं, निरंतर, कभी दबे रूप में, कभी खुले रूप में युद्ध"। प्रत्येक स्तर पर मुख्य विरोधी वर्ग उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्विरोध से पहचाने जाते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के सभी साधनों पर (पूँजी, फैक्ट्री, मशीनें, भूमि इत्यादि) बुर्जुआ वर्ग का अधिकार होता है। दूसरी तरफ़, श्रमिक वर्ग का उत्पादन के सभी साधनों

पर से अधिकार समाप्त हो गया। अतः पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था में मज़दूरों के पास जीवित रहने के लिए, सिवाय अपने श्रम को बेचने के दूसरा कोई रास्ता नहीं रह गया था क्योंकि उनके पास और कुछ बचा ही नहीं था।

अगर दो वर्ग सिद्धांततः एक-दूसरे के विरोधी भी हों तो भी वे स्वतः संघर्ष में नहीं पड़ते हैं। संघर्ष होने के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने वर्ग हित तथा पहचान के प्रति जागरूक हों, साथ ही, अपने विरोधी के हितों तथा पहचान के प्रति सजग रहें। इस प्रकार की 'वर्ग चेतना' के विकसित होने के उपरांत राजनीतिक गोलबंदी के तहत वर्ग संघर्ष होते हैं। इस प्रकार के संघर्षों से प्रभावशाली अथवा शासक वर्ग को उनके द्वारा उखाड़ फेंका जाता है—जो पहले से शासित अथवा अधीनस्थ वर्ग होता है—इसे ही क्रांति कहते हैं। मार्क्सवादी सिद्धांत के तहत आर्थिक प्रक्रियाओं से विरोधों का जन्म होता है जो आगे चलकर वर्ग संघर्ष को जन्म देता है। परंतु आर्थिक प्रक्रियाएँ स्वतः क्रांति का नेतृत्व नहीं करतीं बल्कि सामाजिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाएँ भी समाज को पूर्णतः परिवर्तित करने के लिए आवश्यक होती हैं।

विचारधारा का होना एक मुख्य कारण है क्योंकि आर्थिक तथा सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के संबंध बहुत जटिल होते हैं। प्रत्येक काल में शासक वर्गों द्वारा प्रभुत्वशाली विचारधारा को बढ़ावा दिया जाता है। यह प्रभुत्वशाली विचारधारा अथवा दुनिया को देखने का नज़रिया, शासक वर्ग के प्रभाव तथा विद्यमान सामाजिक क्रम को न्यायसंगत ठहराता है। उदाहरण के तौर पर, प्रभावी विचारधारा गरीब व्यक्तियों को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि वे गरीब इसलिए नहीं हैं कि उनका शोषण अमीरों द्वारा होता है बल्कि अपने 'भाग्य' के कारण अथवा पिछले जन्म में अपने बुरे कर्मों द्वारा इत्यादि।

क्रियाकलाप 2

हालाँकि इसे भी 'वर्ग' कहा जाता है, क्या आप तथा आपके सहपाठियों द्वारा बनाए गए समूह मार्क्सवादी अर्थ में 'वर्ग' कहलाएँगे? इस दृष्टिकोण के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दीजिए। क्या कारखानों तथा कृषि कार्य करने वाले मज़दूर एक ही वर्ग से संबंध रखते हैं, एक ही कारखाने में काम करने वाले मज़दूर तथा मैनेजर—क्या ये एक ही वर्ग से संबंधित हैं? क्या अमीर उद्योगपति अथवा फैक्ट्री के मालिक जो नगरों में रहते हैं तथा जिसके पास कोई कृषि भूमि नहीं है एक ही वर्ग से संबंध रखते हैं जैसे गरीब कृषक मजदूर जो गाँव में रहता है तथा जिसके पास कोई ज़मीन नहीं है? एक ज़मींदार जो काफी ज़मीन का मालिक है और एक छोटा किसान जिसके पास कम भूमि है—क्या ये दोनों एक ही वर्ग से संबंधित होंगे यदि वे एक ही गाँव में रहते हों तथा दोनों ज़मींदार हों? इन उदाहरणों के उत्तर में दिए गए कारणों को ध्यानपूर्वक सोचिए।

सुझावः कल्पना कीजिए इन उदाहरणों में दिए गए लोगों को अच्छी लगने वाली कौन-सी चीज़ें समान हैं; सोचिए कि बृहत सामाजिक व्यवस्था में उन्होंने कौन-सा स्थान ग्रहण किया हुआ है, खासकर उत्पादन प्रक्रिया के संबंध में।

एमिल दुर्खाइम (1858-1917)

15 अप्रैल 1858 में एपिनल में जन्म हुआ जो जर्मन सीमा पर स्थित फ्रांस के लॉरेन प्रांत में था। वे एक रूढ़िवादी यहूदी परिवार से थे और इनके पिता, दादा तथा परदादा सब यहूदी पादरी थे। इन्हें भी प्रारंभ में धार्मिक स्कूल में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया।

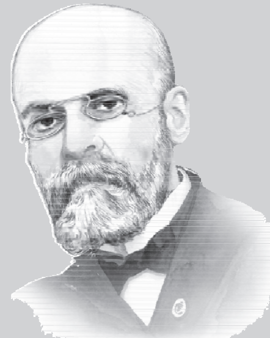

1876 : पेरिस के एकोल नॉरमाल सुपेरियो में दर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिए दाखिल हुए।

1887 : बोर्डियो विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान तथा शिक्षा के लेक्चरर नियुक्त हुए।

1893 : डॉक्टरेट शोध प्रपत्र *डिविजन ऑफ लेबर इन सोसायटी* प्रकाशित।

1895 : *रूल्स ऑफ सोशियोलॉजीकल मैथड* प्रकाशित।

1897 : फ्रांस के प्रथम सामाजिक विज्ञान जर्नल *ऐनी सोशियोलॉजिक* का प्रारंभ और अपना प्रसिद्ध अध्ययन पत्र *स्यूसाइड* प्रकाशित किया।

1902 : पेरिस विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग से जुड़े जो 1913 में शिक्षा एवं समाजशास्त्र के नाम से जाना गया।

1912 : द *एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलीजियस लाइफ* पुस्तक प्रकाशित हुई।

1917 : प्रथम विश्वयुद्ध में अपने बेटे आंद्रे की मृत्यु के सदमे के कारण 59 वर्ष की आयु में निधन।

हालाँकि प्रभुत्वशाली विचारधारा हमेशा सफल नहीं होतीं और उन्हें विरोधी विचारधाराओं अथवा वैकल्पिक वैश्विक दृष्टियों की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। चूँकि प्रत्येक वर्ग में सजगता सतत रूप से नहीं पाई जाती, अत: एक विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति में कोई वर्ग किस प्रकार से कार्य करेगा, इसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। अत: मार्क्स के अनुसार आर्थिक प्रक्रियाएँ ज़्यादातर वर्ग संघर्ष को जन्म देती हैं, हालाँकि यह राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों पर भी निर्भर करता है। अनुकूल परिस्थितियों के अंतर्गत वर्ग संघर्ष क्रांति के रूप में परिणित हो जाता है।

एमिल दुर्खाइम को समाजशास्त्र के औपचारिक संकाय का संस्थापक माना जा सकता है क्योंकि वे सन् 1913 में पेरिस में समाजशास्त्र के पहले प्रोफेसर थे। रूढ़िवादी यहूदी परिवार में जन्मे, दुर्खाइम को 'रेब्बिनिकल विद्यालय' (धार्मिक यहूदी विद्यालय) में प्रारंभिक शिक्षा के लिए भेजा गया। 1876 में जब उन्होंने इकोल नॉरमाल सुपेरियोर में प्रवेश लिया तब अपने धार्मिक अभिविन्यास से संबंध-विच्छेद कर अपने आपको नास्तिक घोषित कर दिया। लेकिन फिर भी, उनके नैतिक पोषण का उनके समाजशास्त्रीय चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा। किसी भी समाज की मुख्य विशेषता उसकी

नैतिक संहिताएँ होती हैं जो व्यक्तिगत आचरण को निर्धारित करती हैं। एक धार्मिक परिवार से आने के कारण, धर्म संबंधित धर्मनिरपेक्ष चिंतन उन्हें बेहद प्रिय था जिसको वे विकसित करना चाहते थे। अपनी इस इच्छा की पूर्ति वे अपनी आखिरी पुस्तक द *एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलीजियस लाइफ* में कर पाए।

दुर्खाइम के लिए समाज एक सामाजिक तथ्य था जिसका अस्तित्व नैतिक समुदाय के रूप में व्यक्ति से ऊपर था। वे बंधन जो मनुष्य को समूहों के रूप में आपस में बाँधते थे, समाज के अस्तित्व के लिए निर्णायक थे। ये बंधन अथवा सामाजिक एकता व्यक्ति पर दबाव डालते हैं ताकि वह समूह के मानदंडों तथा अपेक्षाओं के अनुरूप हो। ये व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों को बाधित करते हैं तथा विविधताएँ एक छोटे दायरे में सिमट जाती हैं। सामाजिक क्रियाओं में विकल्पों को सीमित करने का आशय यह था कि सामाजिक व्यवहार का पुर्वानुमान संभव था क्योंकि व्यवहार प्रतिमान के साथ होता था। इस प्रकार अवलोकित व्यवहार के प्रतिमान को देख कर मानदंडों, संहिताओं तथा सामाजिक एकता को पहचाना जा सकता था जो उन्हें नियंत्रित करते थे। अतः दूसरे प्रकार की 'अमूर्त' चीज़ों का अस्तित्व जैसे–विचारों, मानदंडों, मूल्यों इत्यादि को मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के प्रतिमान के अध्ययन से, आनुभविक रूप से सत्यापित किए जा सकते हैं क्योंकि वे समाज में एक–दूसरे से संबंधित हैं।

दुर्खाइम के अनुसार, सामाजिकता को आचरण की संहिताओं में पाया जा सकता था जो व्यक्ति पर सामूहिक समझौते के तहत ज़बरदस्ती थोपे जाते थे। यह जीवन के दैनिक क्रियाकलापों में देखे जा सकते थे। समाज की वैज्ञानिक समझ, जिसे दुर्खाइम विकसित करना चाहते थे, वह नैतिक तथ्यों की मान्यता पर आधारित थी। उन्होंने लिखा, 'नैतिक तथ्य अन्य तथ्यों की तरह घटित होते हैं; वे क्रिया के नियमों से बने हैं जो विशेष गुणों द्वारा पहचाने जाते हैं, उनका अवलोकन, वर्णन तथा वर्गीकरण किया जा सकता है और वे विशेष कानूनों के द्वारा समझाए जा सकते हैं', (दुर्खाइम 1964:32)। नैतिक संहिताएँ विशेष सामाजिक अवस्थाओं की अभिव्यक्ति थीं। अतः एक समाज की नैतिकता दूसरे समाज के लिए अनुपयुक्त थी। अतः दुर्खाइम के अनुसार नैतिक संहिताओं से सामाजिक परिस्थितियों की व्युत्पत्ति हो सकती है। इसने समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञान के समान बना दिया तथा उनके यह बृहत उद्देश्य समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक संकाय के रूप में स्थापित करने के बहुत निकट थे।

दुर्खाइम की समाजशास्त्रीय दृष्टि

दुर्खाइम की दृष्टि में, समाजशास्त्र में एक नवीन वैज्ञानिक संकाय के रूप में दो मुख्य्य विशेषताएँ हैं। प्रथम, समाजशास्त्र की विषय वस्तु–सामाजिक तथ्यों का अध्ययन दूसरे विज्ञानों की तुलना से भिन्न था। समाजशास्त्र अपने आप से अनन्य रूप से संबंधित था जिसे उन्होंने 'उद्गामी स्तर', अर्थात जटिल सामूहिकता का जीवन–स्तर कहा, जहाँ सामाजिक प्रघटनाओं का उद्‌भव हो सकता है। ये प्रघटनाएँ उदाहरणतः सामाजिक संस्थाएँ जैसे धर्म अथवा परिवार अथवा सामाजिक मूल्यों जैसे दोस्ती अथवा देशभक्ति इत्यादि हैं, जो कि

एक जटिल समग्र में ही संभव है, जो कि अपने दूसरे अंगों से बड़ा (विभिन्न प्रकारों में) है। हालाँकि इसका निर्माण पूर्ण रूप से व्यक्तियों द्वारा होता है, एक सामूहिक सामाजिक पहचान फुटबॉल अथवा क्रिकेट टीम में मात्र ग्यारह व्यक्तियों के समूह से अलग तथा अधिक होती है। सामाजिक पहचान जैसे टीम, राजनीतिक पार्टियाँ, स्ट्रीट गिरोह, धार्मिक समुदाय, राष्ट्र इत्यादि व्यक्ति के स्तर से नहीं अपितु अन्य वास्तविकताओं के स्तर से संबंधित होते हैं। यही वह 'उद्गम' स्तर है जिसका अध्ययन समाजशास्त्री करते हैं।

दुर्खाइम के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता थी—अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह इसे भी आनुभविक विषय होना चाहिए था। यह वास्तव में एक कठिन दावा था क्योंकि सामाजिक प्रघटनाएँ अपनी प्रकृति में ही अमूर्त होती हैं। हम सामूहिक पहचान के रूप में जैन समुदाय, अथवा बंगाली (अथवा मलयाली या मराठी) बोलने वाले समुदाय अथवा नेपाली या मिस्त्र राष्ट्र के समुदायों को देख नहीं सकते। कम से कम, हम उन्हें उसी तरह सीधे रूप में नहीं देख सकते जिस प्रकार से हम एक पेड़ या लड़का या बादल को देख सकते हैं। यदि सामाजिक प्रघटना छोटी हो तो भी—जैसे एक परिवार अथवा नाट्यसमूह—हम सीधे तौर पर उन व्यक्तियों को देखते हैं, जो इस सामूहिकता का निर्माण करते हैं, हम सामूहिकता को नहीं देख सकते। दुर्खाइम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इस तथ्य को दर्शाती है कि समाजशास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जो अमूर्त तत्वों, जैसे सामाजिक तथ्यों, का विज्ञान हो सकता है जो अवलोकन, आनुभविक इंद्रियानुभवी सत्यापनीय साक्ष्यों पर आधारित हो। हालाँकि व्यवहार प्रत्यक्ष रूप में अवलोकित नहीं होता, सामाजिक तथ्यों को अप्रत्यक्ष रूप से व्यवहार के प्रतिमान में अवलोकित किया जा सकता है। नवीन आनुभविक आँकड़ों पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण 'आत्महत्या' पर इनके द्वारा किया गया अध्ययन है। हालाँकि आत्महत्या का प्रत्येक अध्ययन विशिष्ट रूप से व्यक्ति तथा उसकी परिस्थितियों से संबंधित होता है, परंतु यह भी एक सामाजिक तथ्य है कि आत्महत्या की औसत दर समुदाय में हज़ारों की संख्या में होती है। अतः सामाजिक तथ्य का अवलोकन सामाजिक व्यवहार से और मुख्यतः सामाजिक व्यवहार के कुल प्रतिमानों से किया जा सकता है।

अतः 'सामाजिक तथ्य' क्या हैं? सामाजिक तथ्य वस्तुओं की तरह होते हैं। वे व्यक्ति के लिए बाह्य होते हैं परंतु उनके आचरण को बाधित करते हैं। कानून, शिक्षा तथा धर्म जैसी संस्थाएँ सामाजिक तथ्यों का गठन करती हैं। सामाजिक तथ्य सामूहिक प्रतिनिधान होते हैं जिनका उद्भव व्यक्तियों के संगठन से होता है। वे व्यक्ति विशिष्ट के लिए न होकर सामान्य प्रकृति के होते हैं और व्यक्तियों से स्वतंत्र होते हैं। मान्यताएँ, संवेदनाएँ अथवा सामूहिक मान्यताएँ इसके कुछ उदाहारण हैं।

समाज में श्रम-विभाजन

अपनी पहली पुस्तक *डिवीज़न ऑफ लेबर इन सोसायटी* में दुर्खाइम ने समाज के आदिम से आधुनिक तक के उद्विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण की अपनी विधि को स्पष्ट किया है। उन्होंने समाज का वर्गीकरण सामाजिक एकता

की प्रकृति के आधार पर किया जो उस समाज में विद्यमान थी। उन्होंने तर्क दिया कि जहाँ आदिम समाज का संगठन 'यांत्रिक एकता' पर आधारित था वहीं आधुनिक समाज का आधार 'सावयवी एकता' पर आधारित था। यांत्रिक एकता का आधार व्यक्तिगत एकरूपता होती है तथा यह कम जनसंख्या वाले समाजों में पाई जाती है। यह विशिष्ट रूप से विभिन्न स्वावलंबित समूह है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट समूह के अंतर्गत एक जैसे क्रियाकलापों तथा प्रकार्यों में लिप्त रहता है। चूँकि व्यक्तियों की एकता अथवा आपसी बंधन समरूपता तथा व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित होते हैं, अतः इस प्रकार के समाज किसी प्रकार की विषमता के प्रति सहिष्णु नहीं होते तथा समाज के किसी मानदंड की अवहेलना करने पर कठोर दंड दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यांत्रिक एकता पर आधारित समाजों में दमनकारी कानून बनाए जाते हैं ताकि सामाजिक मान्यताओं से विचलन को रोका जा सके। ऐसा इसलिए था क्योंकि व्यक्ति तथा समाज आपस में जुड़े हुए थे और इसकी आशंका रहती थी कि आचरण की मान्यताओं के भंग होने से समाज बिखर सकता था।

आधुनिक समाज की एक मुख्य विशेषता 'सावयवी एकता' है और यह सदस्यों की विषमताओं पर आधारित है। यह बृहत् जनसंख्या वाले समाज में पाई जाती है, जहाँ अधिकतर सामाजिक संबंध अवैयक्तिक होते हैं। इस प्रकार के समाज का आधार संस्थाएँ होती हैं और इसका प्रत्येक घटक अथवा इकाई अपने आप में स्वावलंबी न होकर अपने उत्तरजीवी की दूसरी इकाई अथवा समूह पर आश्रित होती हैं। पारस्परिक निर्भरता सावयवी एकता का सार है। यहाँ व्यक्ति को प्रमुखता दी जाती है तथा वे एक दूसरे से भिन्न आवश्यकताओं की आज्ञा ही नहीं देते बल्कि उनके सावयवी संबंधों तथा बहुविकल्पीय भूमिकाओं को मान्यता भी प्रदान करते हैं। आधुनिक समाज के कानून 'दमनकारी' न होकर 'क्षतिपूरक' प्रवृत्ति के होते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि आधुनिक समाज में कानून का मुख्य उद्देश्य अपराधी कृत्यों में सुधार लाना या उसे ठीक करना है। ठीक इसके विपरीत, आदिम समाज में कानून द्वारा गलत कार्य करने वालों को सजा दी जाती थी जो एक प्रकार से उसके कृत्यों के लिए सामूहिक प्रतिशोध होता था। आधुनिक समाज में व्यक्ति को स्वायत्त शासन की कुछ छूट थी जबकि आदिम समाज में व्यक्ति पूर्ण रूप से सामूहिकता में लिप्त था।

आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता यह है कि समान उद्देश्य वाले व्यक्ति स्वैच्छिक रूप से एक–दूसरे के करीब आकर समूह और संगठन बना लेते हैं क्योंकि ये समूह एक विशिष्ट उद्देश्य से प्रेरित होते हैं अतः एक दूसरे से भिन्न रहते हुए उनके सदस्यों के संपूर्ण जीवन को ग्रहण नहीं करते। अतः विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों की भिन्न–भिन्न पहचान होती है। यह व्यक्ति को समाज की छत्रछाया से बाहर निकाल, उनके प्रकार्य तथा भूमिका का निर्वाह करने में तथा अपनी अलग पहचान बनाने में मदद करती है। चूँकि हर व्यक्ति को अपनी बुनियादी ज़रूरतों (जैसे–रोटी, कपड़ा, मकान तथा शिक्षा) की पूर्ति के लिए

दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है इसके लिए उसकी दूसरों के साथ अन्त:क्रिया बढ़ जाती है। इस प्रकार के समाज में, अवैयक्तिक नियम तथा विधानों की आवश्यकता सामाजिक संबंधों के नियंत्रण के लिए होती है क्योंकि वैयक्तिक संबंधों का निर्वाह अधिक जनसंख्या में संभव नहीं होता।

'द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी' दुर्खाइम के चिंतन के महत्त्व को दर्शाता है। एक सर्वथा भिन्न विषय को लेकर उसे नवीन वैज्ञानिक शाखा के रूप में स्थापित करने की कोशिश, जो इस प्रकार आनुभविक विधिसंगत हो, जिस प्रकार वे सामाजिक तथ्य के रूप में विभिन्न प्रकार की सामाजिक एकता पर परिचर्चा करते हैं; जिसकी

क्रियाकलाप 3

दुर्खाइम तथा मार्क्स ने सामाजिक श्रम विभाजन के विषय में क्या कहा—तुलना करने की कोशिश कीजिए। दोनों सहमत हैं कि जैसे-जैसे समाज का उद्‍विकास होता है उत्पादन के साधन जटिल होते जाते हैं। श्रम विभाजन और विस्तृत हो जाता है और यह विभिन्न सामाजिक समूहों में पारस्परिक निर्भरता को बढ़ाता है। परंतु जहाँ दुर्खाइम एकता पर बल देते हैं वही मार्क्स संघर्ष पर। आप इस बारे में क्या सोचते हैं?

क्या आप कारण बता सकते हैं कि मार्क्स आधुनिक समाज के विषय में गलत क्यों हो सकते हैं? उदाहरणत: क्या आप ऐसी किसी स्थिति अथवा उदाहरण के बारे में सोच सकते हैं जहाँ व्यक्ति विभिन्न वर्गों की पृष्ठभूमि तथा हितों में संघर्ष होने पर भी आपस में एक समूह तथा सामूहिकता में जुड़ते हैं? मार्क्स अभी भी सही हैं—इस विषय पर किसी को समझाने के लिए आप कौन से तर्क देंगे?

दुर्खाइम आधुनिक समाज में व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता दिए जाने पर गलत क्यों हो सकते हैं? क्या आप कुछ कारण ढूँढ़ सकते हैं? उदाहरणत: क्या यह सत्य नहीं है कि जनसंचार सुविधाओं (विशेषकर टेलीविज़न) ने लोकप्रिय फैशन को, कपड़ों तथा संगीत को मानकीकृत किया है? पहले की तुलना में आज के नवयुवक जो विभिन्न सामाजिक समूहों, देशों, राज्यों, अथवा धर्मों के हैं; ज़्यादातर एक ही प्रकार का संगीत सुनते हैं। क्या यह दुर्खाइम को गलत साबित करता है? इस संदर्भ के पक्ष तथा विपक्ष में क्या तर्क हो सकते हैं?

ध्यान रखिए—समाजशास्त्र गणित की तरह नहीं है जहाँ अधिकतर एक ही सही उत्तर होता है। समाज तथा व्यक्तियों से संबंधित किसी भी चीज़ के एक से अधिक सही उत्तर हो सकते हैं अथवा एक संदर्भ में वह सही तथा दूसरे में गलत हो सकते हैं अथवा आंशिक सत्य अथवा असत्य हो सकते हैं इत्यादि। दूसरे शब्दों में, सामाजिक दुनिया बहुत जटिल है और यह समय तथा स्थानानुसार बदलती रहती है। यह सीखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि कैसे कारणों के विषय में ध्यानपूर्वक सोचा जाए कि विशिष्ट उत्तर ही विशिष्ट संदर्भ में सही अथवा गलत क्यों होते हैं, इसका पता लगा सकें।

बिलकुल स्पष्ट अभिव्यक्ति सामाजिक एकता में होती है। उनके उद्देश्य तथा सामाजिक संबंधों के धर्मनिरपेक्ष विश्लेषण (जो विभिन्न समाजों में विद्यमान होते हैं) ने समाजशास्त्र को समाज में एक नवीन विज्ञान के रूप में स्थापित करने की नींव डाली।

मैक्स वैबर (1864-1920)

मैक्स वैबर का जन्म 21 अप्रैल 1864 को एरफर्ट (जर्मनी) के एक परशियन परिवार में हुआ। इनके पिता एक मजिस्ट्रेट तथा राजनीतिज्ञ थे जो एक राजशाही बिस्मार्क के अनुयायी थे। इनकी माता हेडेलबर्ग के विशिष्ट उदार परिवार से संबंधित थीं।

1882	:	कानून की शिक्षा के लिए हेडेलबर्ग गए।
1884	:	गोटिजेन तथा बर्लिन विश्वविद्यालयों में अध्ययन।
1889	:	डॉक्टरेट शोध प्रपत्र *ए कॉन्ट्रीब्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ मेडिवियल बिज़नेस ऑरगेनाईज़ेशन्स* जमा किया।
1891	:	हैविलिटेशन शोधपत्र *रोमन एग्रेरियन हिस्ट्री एंड द सिगनिफिकेंस फॉर पब्लिक एंड प्राइवेट लॉ* जमा किया (शिक्षण के लिए आवश्यक)।
1893	:	मैरिआन शिन्टजर से विवाह।
1894-96	:	प्रोफ़ेसर (अर्थशास्त्र) के रूप में पहले फ्रेबर्ग तथा बाद में हैडेलबर्ग में नियुक्ति।
1897-1901	:	तंत्रिका भंग होने के कारण गंभीर रूप से बीमार; कार्य करने में असमर्थ, रोम चले गए।
1901	:	शिक्षण के क्षेत्र में पुनः लेखन।
1903	:	*आर्काइव्स फॉर सोशल साइंस एंड सोशल वेलफेयर* के सह-संपादक।
1904	:	अमेरिका भ्रमण; द *प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पीरिट ऑफ कैपिटलिज़्म* का प्रकाशन।
1918	:	वियेना में विशेष रूप से स्थापित समाजशास्त्र विभाग का कार्यभार संभाला।
1919	:	म्यूनिख़ विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर (अर्थशास्त्र) के रूप में नियुक्ति।
1920	:	निधन। इनकी मृत्यु के पश्चात ही इनके अधिकतर लेखन कार्यों का प्रकाशन तथा अनुवाद हुआ। ये हैं—द *प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पीरिट ऑफ कैपिटलिज़्म* (1930), *फ्रॉम मैक्स वैबर—ऐसेज इन सोशयोलॉजी* (1946), *मैक्स वैबर ऑन द मेथोडोलॉजी ऑफ सोशल साइंसेज़* (1949), द *रिलिजन ऑफ इंडिया* (1958) तथा *इकॉनामी एंड सोसायटी* (3 खंड 1968)।

मैक्स वैबर जर्मनी में अपने समय के महत्त्वपूर्ण सामाजिक विचारक थे। सामाजिक तथा मानसिक तौर पर काफी लंबे समय तक बीमार रहने पर भी अपने पीछे समाजशास्त्रीय लेखन का एक अपूर्व भंडार छोड़ गए हैं। उन्होंने कई विषयों पर विस्तारपूर्वक लिखा है परंतु मुख्यत: सामाजिक क्रिया, व्याख्यात्मक समाजशास्त्र तथा शक्ति और वर्चस्व के विकास पर कार्य किया है। वैबर के चिंतन का दूसरा विषय आधुनिक समाज में युक्तिसंगत प्रक्रिया, विश्व के विभिन्न धर्मों का संबंध इस प्रक्रिया से है।

मैक्स वैबर और व्याख्यात्मक समाजशास्त्र

वैबर ने यह तर्क दिया कि सामाजिक विज्ञानों का पूर्ण उद्देश्य 'सामाजिक क्रिया की व्याख्यात्मक सोच' का विकास करना है। अत: ये विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान से बहुत अलग थे, जिनका उद्देश्य 'प्रकृति के नियमों' की खोज था, जो इस भौतिक विश्व को संचालित करते हैं। चूँकि सामाजिक विज्ञानों का सामाजिक क्रियाओं से मुख्य सरोकार था तथा मानवीय क्रियाएँ मुख्यत: विषयगत अर्थों से संबद्ध होती हैं, अत: सामाजिक विज्ञान की पद्धतियाँ प्राकृतिक विज्ञान की पद्धतियों से भिन्न होंगी। वैबर के लिए 'सामाजिक क्रिया' में वे सब मानवीय व्यवहार सम्मिलित थे जो अर्थपूर्ण थे अर्थात् वे क्रियाएँ जिनसे कर्ता किसी अर्थ को संबद्ध करता हो। सामाजिक क्रिया के अध्ययन में समाजशास्त्री का कार्य उन अर्थों को ढूँढ़ना था जो कर्ता द्वारा समझे जाते थे। इस कार्य को पूर्णता देने के लिए समाजशास्त्री को स्वयं उस कर्ता के स्थान पर अपने आपको रखकर यह कल्पना करनी होती थी कि इनके अर्थ क्या हैं और क्या हो सकते थे। अत: समाजशास्त्र सुव्यवस्थित रूप से 'समानुभूति' अर्थात् ऐसी समझ जो 'अनुभूति' (समानुभूति) पर आधारित न हो बल्कि 'अनुभूति के साथ' (समानुभूति) हो। 'समानुभूति' को समाजशास्त्री इस अभ्यास से निकालते हैं, वह उन्हें सामाजिक कर्ताओं के विषयगत अर्थों को समझने तथा उनके अभिप्रेरकों को समझने में मदद करता है।

वैबर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने विशेष तथा जटिल प्रकार की 'वस्तुनिष्ठता' की बात की जिसे सामाजिक विज्ञान को अपनाना था। सामाजिक विश्व की खोज मनुष्य के अर्थों, मूल्यों, समझ, पूर्वाग्रह, आदर्शों इत्यादि पर आधारित है। इस दुनिया के अध्ययन हेतु, सामाजिक विज्ञान को इन विषयगत अर्थों को समझने के लिए तथा उसका संपूर्ण वर्णन करने के लिए, सामाजिक वैज्ञानिकों को सदैव 'समानुभूति समझ' को अपनाना पड़ेगा और इसे अपनाने के लिए स्वयं उनके स्थान पर (काल्पिक रूप से) जिनकी क्रियाओं का वे अध्ययन कर रहे होते हैं उन्हें रखना पड़ेगा। लेकिन यह अध्ययन वस्तुनिष्ठ तरीके से करना था हालाँकि यह विषयगत मामला था। अत: 'समानुभूति समझ' के लिए यह आवश्यक है कि समाजशास्त्री, बिना स्वयं की निजी मान्यताओं तथा प्रक्रिया से प्रभावित हुए, पूर्णरूपेण विषयगत अर्थों तथा सामाजिक कर्ताओं की अभिप्रेरणाओं को ईमानदारीपूर्वक अभिलिखित करें। दूसरे शब्दों में, समाजशास्त्री दूसरों की विषयगत भावनाओं का वर्णन करें न कि परखें। वैबर ने इस प्रकार

की वस्तुनिष्ठता को 'मूल्य तटस्थता' कहा है। समाजशास्त्री इन विषयगत मूल्यों का ब्यौरा तटस्थ होकर, इन मूल्यों के प्रति बिना अपनी भावनाओं में बहे, करते हैं। वैबर ने यह बताया कि यह बेहद कठिन था क्योंकि सामाजिक वैज्ञानिक समाज के सदस्य भी होते हैं और उनकी अपनी मान्यताएँ तथा पूर्वाग्रह होते हैं। हालाँकि उन्हें स्व-अनुशासन के लिए अधिक प्रयत्न करना पड़ता है–'लौह संकल्पशक्ति का अभ्यास जैसा उन्होंने कहा है–ताकि दूसरों के मूल्यों तथा विश्वदृष्टिकोण का वर्णन करते हुए वे तटस्थ रहें।'

समानुभूत समझ के अतिरिक्त, वैबर ने समाजशास्त्र के लिए एक अन्य पद्धतिशास्त्रीय उपकरण 'आदर्श प्रारूप' की बात की। 'आदर्श प्रारूप' सामाजिक घटना का तार्किक एकरूपीय मॉडल है जो इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को रेखांकित करता है। विश्लेषण में मदद के लिए बनाए गए अवधारणात्मक प्रारूप होने के कारण इसका निर्माण वास्तविकता को हू-ब-हू दर्शाने के लिए नहीं हुआ है। 'आदर्श प्रारूप' प्रघटना प्रारूपों को जो विश्लेषणात्मक रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं, उसे बढ़ा-चढ़ाकर तथा दूसरों को नजरअंदाज़ अथवा कमतर दिखाते हैं। व्यापक रूप से 'आदर्श प्रारूप' को वास्तविकता के समरूप होना चाहिए परंतु इसका मुख्य कार्य अध्ययनरत सामाजिक प्रघटना के मुख्य प्रारूपों को जोड़ने तथा उनके विश्लेषण में सहायता करना है। आदर्श प्रारूप विश्लेषण तथा समझने में कितने सहायक हैं–इस तथ्य पर उन्हें जाँचा जाता है, न कि यह कि वे कितने यथार्थ अथवा विस्तारपूर्वक उसकी विवेचना करते हैं।

विश्व के अलग-अलग धर्मों के नैतिक संबंधों और अलग-अलग सभ्यताओं की सामाजिक व्यवस्था को समझने और उसका विश्लेषण करने के लिए वैबर ने एक आदर्श प्रारूप तैयार किया था। इसी के संदर्भ में वैबर ने सुझाव दिया था कि यूरोप में पूँजीवाद के आगमन एवं विकास के लिए कुछ प्रोटेस्टेंट इसाई वर्गों के मूल्यों ने बहुत ही गहरे रूप से प्रभावित किया था।

वैबर ने पुनः आदर्श प्रारूपों का प्रयोग तीन विभिन्न प्रकार की सत्ता को परिभाषित करने के लिए किया। वे हैं–पारंपरिक, करिश्माई तथा तर्कसंगत-वैधानिक। जहाँ पारंपरिक सत्ता का उद्‌भव प्रथा तथा प्रचलन से हुआ था वहीं करिश्माई सत्ता का उद्‌भव 'दैविक स्रोतों' अथवा ईश्वर की देन में ढूँढ़ा गया तथा सत्ता जो तर्कसंगत-वैधानिकता पर आधारित थी, उसका आधार कानून था। तर्कसंगत–वैधानिक सत्ता जिसका प्रचलन आधुनिक युग में भी देखा जा सकता है, नौकरशाही उसका प्रतीक है।

नौकरशाही

नौकरशाही संगठन का वह साधन था जो घरेलू दुनिया को सार्वजनिक दुनिया से अलग करने पर आधारित था। इसका अर्थ यह हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र में व्यवहार स्पष्ट नियमों से संचालित होते थे। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक संस्था के रूप में, नौकरशाही कर्मचारियों की शक्तियों को उनकी ज़िम्मेदारियों की तुलना में प्रतिबंधित करती है तथा उन्हें संपूर्ण शक्ति प्रदान नहीं करती।

नौकरशाही सत्ता की विशिष्टताएँ हैं–

(क) अधिकारियों के प्रकार्य (कार्य)।

(ख) पदों का सोपानिक क्रम।
(ग) लिखित दस्तावेज़ों की विश्वसनीयता।
(घ) कार्यालय का प्रबंधन।
(ङ) कार्यालयी आचरण।

(i) *अधिकारियों का प्रकार्य*–नौकरशाही के अंतर्गत 'कार्यालयी क्षेत्राधिकार' होते हैं जिनका संचालन नियम, कानून तथा प्रशासनिक विधानों द्वारा होता है। नौकरशाही संस्थान के नियमित क्रियाकलाप का बँटवारा नियत रूप से सरकारी कर्तव्यों के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त, उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ वर्गों को आदेश स्थायी रूप से दिए जाते हैं, परंतु उनकी ज़िम्मेदारियों को परिसीमित कर उसका जिम्मा योग्य अधिकारियों को दिया जाता है। चूँकि, कर्तव्यों का निर्वहन नियमित रूप से किया जाना होता है अतः केवल उन्हीं व्यक्तियों को नौकरी पर रखा जाता है जिनके पास उससे संबंधित योग्यताएँ होती हैं। नौकरशाही में सरकारी पद पदधारी से स्वतंत्र होते हैं क्योंकि वे उनके कार्यकाल के पश्चात भी बने रहते हैं।

(ii) *सोपानिक क्रम*–अधिकारी तथा कार्यालय श्रेणीगत सोपान पर आधारित होते हैं जहाँ उच्च अधिकारी द्वारा निम्न अधिकारियों का निर्देशन किया जाता है। निम्न अधिकारियों के निर्णय से असंतुष्टता की स्थिति में उच्च अधिकारियों से अपील की गुंजाइश रहती है।

(iii) *लिखित दस्तावेज़ों की विश्वसनीयता*–नौकरशाही व्यवस्थाओं का प्रबंधन लिखित दस्तावेज़ों के आधार पर चलाया जाता है तथा फ़ाइलों को रिकॉर्ड के रूप में सँभाल कर रखा जाता है। कार्यालय अथवा ब्यूरों का निर्णायक तंत्र मिलजुल कर निर्णय लेने लगा है। यह सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र का भाग होता है जो अधिकारियों के निजी जीवन से अलग होता है।

(iv) *कार्यालय प्रबंधन*–चूँकि कार्यालय प्रबंधन विशिष्ट तथा आधुनिक क्रिया है अतः यहाँ कार्य के लिए प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है।

(v) *कार्यालयी आचरण*–कार्यालयी क्रियाकलाप कर्मचारियों से संपूर्ण एकाग्रता की अपेक्षा करते हैं, बिना इसके कार्यालय में उसका समय परीसीमित ही क्यों न हो। अतः कार्यालय में एक कर्मचारी का आचरण नियमों तथा कानूनों द्वारा नियंत्रित होता है। ये उनके सार्वजनिक आचरण को निजी व्यवहार से अलग करते हैं। चूँकि ये नियम तथा विधान कानूनी रूप में पहचाने जाते हैं। अतः कर्मचारियों को इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।

वैबर द्वारा नौकरशाही का राजनीतिक सत्ता के आधुनिक रूप में चरित्रांकन नहीं किया गया है। इसने दिखाया कि किस प्रकार एक कर्ता अपने कौशल तथा प्रशिक्षण के लिए भी

पहचाना/पहचानी जाता/जाती है तथा उन्हें ज़िम्मेदारियों को लागू तथा पूर्ण करने के लिए आवश्यक शक्ति दी जाती है। कानूनी परिसीमितता ने उनके कार्यों तथा सत्ता को, अनियंत्रित शक्तियों को सीमित कर, कर्मचारियों को अपने सेवार्थियों के प्रति ज़िम्मेदार बनाया क्योंकि वह कार्य सार्वजनिक क्षेत्र में पूरा किया जाता था।

क्रियाकलाप 4

आप किस हद तक सोचते हैं कि कहाँ तक निम्नलिखित समूहों अथवा गतिविधियों में वैबर के अर्थों में नौकरशाही सत्ता का प्रयोग हुआ है?
(क) आपकी कक्षा (ख) आपका विद्यालय (ग) फुटबॉल टीम (घ) एक गाँव की पंचायत समिति (ङ) लोकप्रिय अभिनेता के प्रशंसकों का संघ (च) ट्रेन अथवा बस में रोज़ाना सफर करने वाले लोगों का समूह (छ) सामूहिक परिवार (ज) ग्रामीण समुदाय (झ) जहाज का क्रू (ञ) अपराधियों का गिरोह (ट) धार्मिक नेता के अनुयायी (ठ) सिनेमा घर में सिनेमा देखते हुए लोग।

आपकी चर्चा के आधार पर किस समूह को आप 'नौकरशाही' के रूप में पहचानेंगे? आप पक्ष तथा विपक्ष–दोनों तथ्यों पर चर्चा कीजिए तथा जो आपसे असहमत हों उन्हें ध्यानपूर्वक सुनिए!

शब्दावली

अलगाव–पूँजीवादी समाज में ऐसी प्रक्रिया जिसके अंतर्गत मनुष्य प्रकृति से (अथवा अजनबी बना दिया जाता है), अन्य मनुष्यों से, उनके कार्य तथा उत्पाद से स्वयं को दूर महसूस करता है।

ज्ञानोदय–18वीं शताब्दी के यूरोप का ऐसा समय जब दार्शनिकों ने धार्मिक सिद्धांतों की सर्वमान्यता को एक सिरे से नकार दिया, सत्य के लिए कारण को मुख्य माना तथा मनुष्य को उस कारण का एकमात्र निमित्त माना गया।

सामाजिक तथ्य–सामाजिक वास्तविकता का एक पक्ष जो आचरण तथा मान्यताओं के सामाजिक प्रतिमान से संबंधित है, जो व्यक्ति द्वारा बनाया नहीं गया है परंतु उनके व्यवहार पर दबाव डालता तथा उन्हें प्रभावित करता है।

उत्पादन के साधन–भौतिक उत्पादन की एक प्रणाली जो एक लंबे समय तक चलती है। प्रत्येक उत्पादन का साधन अपने उत्पादन के तरीकों (उदाहरण–तकनीकी तथा उत्पादन संगठन के प्रकार) तथा उत्पादन से उसके संबंधों से (उदाहरण–दासत्व, सर्फ, वैतनिक मजदूर) पहचाना जाता है।

ऑफ़िस–(नौकरशाही के संदर्भ में) सरकारी पद अथवा औपचारिक शक्ति तथा निर्वैयक्तिक स्थिति जहाँ शक्तियाँ तथा कर्तव्य परिलक्षित होते हैं; ऑफ़िस का अलग अस्तित्व होता है जो व्यक्ति से संबंधित नहीं होता। (इसी शब्द के अन्य अर्थ से भिन्न जो वास्तविक नौकरशाही संस्था अथवा उसकी वास्तविक भौतिक स्थिति को इंगित करता है। उदाहरण: पोस्ट ऑफ़िस, पंचायत ऑफ़िस; प्रधानमंत्री ऑफ़िस, मेरे पिता अथवा माता का ऑफ़िस इत्यादि।

अभ्यास

1. बौद्धिक ज्ञानोदय किस प्रकार समाजशास्त्र के विकास के लिए आवश्यक है?
2. औद्योगिक क्रांति किस प्रकार समाजशास्त्र के जन्म के लिए उत्तरदायी है?
3. उत्पादन के तरीकों के विभिन्न घटक कौन-कौन से हैं?
4. मार्क्स के अनुसार विभिन्न वर्गों में संघर्ष क्यों होते हैं?
5. 'सामाजिक तथ्य' क्या हैं? हम उन्हें कैसे पहचानते हैं?
6. 'यांत्रिक' और 'सावयवी' एकता में क्या अंतर है?
7. उदाहरण सहित बताएँ कि नैतिक संहिताएँ सामाजिक एकता को कैसे दर्शाती हैं?
8. 'नौकरशाही' की बुनियादी विशेषताएँ क्या हैं?
9. सामाजिक विज्ञान में किस प्रकार विशिष्ट तथा भिन्न प्रकार की वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता होती है?
10. क्या आप ऐसे किसी विचार अथवा सिद्धांत के बारे में जानते हैं जिसने आधुनिक भारत में किसी सामाजिक आंदोलन को जन्म दिया हो?
11. मार्क्स तथा वैबर ने भारत के विषय में क्या लिखा है–पता करने की कोशिश कीजिए।
12. क्या आप कारण बता सकते हैं कि हमें उन चिंतकों के कार्यों का अध्ययन क्यों करना चाहिए जिनकी मृत्यु हो चुकी है? इनके कार्यों का अध्ययन न करने के कुछ कारण क्या हो सकते हैं?

संदर्भ

बेनेडिक रेन्हार्ड, 1960: *मैक्स वैबर: ऐन इंटेलेक्चुअल पोरट्रेट,* एन्कर बुक्स, न्यूयॉर्क।

दुर्खाइम, एमिल, 1964: द *डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी,* जॉर्ज सिम्पसन (अनु.), मैकमिलन, न्यूयॉर्क।

इग्नू, 2004. ई.एस.ओ. 13-1: *अर्ली सोशयोलॉजी*, नयी दिल्ली।